'ब्रह्म सत्यं जगत् स्फूर्तिः, जीवनं सत्यशोधनम्'

विनोबा-प्रवचन

(सप्ताह में तीन बार—मंगल, गुरु और शनि को प्रकाशित)

वर्ष ३, अंक ३४ | वाराणसी, शनिवार, २१ मार्च, १९५९ | पचीस रुपया वार्षिक

शान्ति-सैनिकों के बीच

गगवान (राज०) २-३-'५९

शान्ति-सैनिकों को बीमार पड़ने का हक नहीं है

शांतिसेना का आरंभ बापू ने कर ही दिया था। वे शांति-सेना के सेनापति तथा प्रथम सैनिक भी थे। वे दोनों नातों से अपना काम पूरा करके चले गये। शांतिसेना की बात नयी नहीं, पुरानी है। सन्तों ने ऐसी सेना बनायी भी है। दुनिया के भिन्न-भिन्न देशों में उसका इतिहास भी पढ़ने को मिलता है। मैंने जब तेलंगाना में प्रवेश किया था, तब जाहिर किया था कि मैं यहाँ शांति-सैनिक के नाते आया हूँ। शान्ति-सेना का आरम्भ मेरे लिए वहींसे हो गया था। तबसे आज तक यही खयाल मन में रहा है कि मैं शांति-सैनिक के नाते ही घूम रहा हूँ। अभी कश्मीर में जाने का सोचा गया है। उसमें भी मेरी यही दृष्टि रहेगी। कश्मीर में अभी प्रवेश नहीं हुआ है। वहाँ कोई शांति-सैनिक भी नहीं बने हैं, लेकिन आज कश्मीर का नाम लेते ही एक सैनिक बहन खड़ी हुई। उसने पाँच मिनट पहले ही अपना नाम शांति-सैनिक के लिए हमारे पास दिया है। इसलिए आज यहींसे कश्मीर का आरम्भ हो गया है। यही एक शुभ शकुन है। मैं अपनी कश्मीर-यात्रा से बहुत ज्यादा अपेक्षा नहीं रखता हूँ। केवल निरीक्षण की ही अपेक्षा लिये वहाँ जा रहा हूँ। ईश्वर ने चाहा तो कश्मीर में बहुत अच्छी सेना बन सकती है। राणा प्रताप के नाम से राजस्थान से मैंने कुछ आशा रखी थी। अपनी यात्रा में मैंने देखा है कि वह यहाँ पूरी हो सकती है और सेना खड़ी हो सकती है।

शान्तिसेना हिन्दुस्तान का दुःख मिटायेगी

मैंने आशा की थी कि इस रेली में ५०० सैनिक आयेंगे। गुजरात में कहीं बोलते समय मैंने अपने इसी अन्दाज का उल्लेख किया था। किन्तु वहाँ बताया गया कि इस रेली में करीब ८७५ लोग हैं। जिसमें भी समस्त शान्ति-सैनिक यहाँ नहीं आये हैं। कुछ लोगों ने तय किया कि वे जिस काम में लगे हैं, उनके लिए उसीमें लगे रहना अच्छा है। इस-लिए भी वे लोग यहाँ सम्मिलित नहीं हुए। जो नहीं आये, उन सबको ध्यान में रखकर देखा जाय तो शान्ति-सैनिकों की संख्या लगभग एक हजार के आस-पास पहुँच गयी है। जितनी संख्या के बारे में मैं सोच रहा था, उससे दुगुनी संख्या हो गयी है। जब मन निःशंक होता है, तब कार्य आगे बढ़ता ही है।

मैं आशा करता हूँ कि हिन्दुस्तान का दुःख मिटाने में यह छोटी-सी सेना कामयाब होगी। इस सेना में बूढ़े हैं, बहनें हैं और बीमार लोग भी हैं।

नेपाल की एक बहन भी इस शांति-सेना में दाखिल हुई है, यह बहुत खुशी की बात है। मैं उम्मीद करता हूँ कि हिन्दुस्तान व दुनिया का दुःख मिटाने का काम यह शान्ति-सेना करेगी। जिस प्रकार भूदान, ग्रामदान आदि का कार्य थोड़ा चला, उसके परिणामस्वरूप भूमि-समस्या आदि के बारे में दिमाग साफ हुआ और आगे का पथ प्रशस्त हुआ, उसी प्रकार इस काम से दूसरी राह खुल जायगी।

मेरी समस्या

यहाँ हम लोग इसलिए एकत्र हुए कि हम अपनी-अपनी समस्याएँ प्रस्तुत करें। मेरे सामने एक समस्या है, वही पहले पेश करूँ। मैं नहीं जानता कि उसका हल कैसे निकलेगा? मैंने माना है कि शांति-सैनिकों को बीमार पड़ने का हक नहीं है। कोशिश तो मेरी भी रही है, पर लोग यह समझते हैं कि मैं शरीर के विषय में बहुत बेदरकार हूँ। बचपन में मैं जरूर बेदरकार था। उस समय ज्ञान-प्रधान वृत्ति थी। अतः दूसरे किसी विषय पर मेरा ध्यान ही नहीं जाता था और तब शरीर का ध्यान भी कुछ कम ही थी। ऐसे ही कुछ कारणों से बचपन में बेदरकारी थी। लेकिन इन दिनों मैं अपने शरीर के प्रति बेदरकार नहीं हूँ। मैं आज जो भी काम करता हूँ, बहुत सावधानी के साथ करता हूँ। अगर मैं बीमार होता हूँ तो उसकी खबरें हिन्दुस्तान भर में पहुँचती हैं। उससे लोगों को भय भी लगता है और दुःख भी होता है। मैं यह समझता हूँ कि शान्ति-सैनिकों को और दूसरी चीजों का हक हो, लेकिन बीमार पड़ने का हक नहीं हो सकता। उनका जीवन समाज-सेवा के लिए अर्पित होता है। हम अपनी असावधानी से समाज-सेवा में विघ्न पैदा करें तो वह हमारी पारमार्थिक अयोग्यता मानी जायगी।

अब आप अपनी समस्याएँ पेश कर सकते हैं। उन समस्याओं को हम भी सुनेंगे, आप भी सुनेंगे और सारे लोग मिलकर समस्याओं को सुलझाने का प्रयत्न करेंगे।

स्वागत-प्रवचन

कोबा (अहमदाबाद) २२-१२-'५८

शुद्ध विचार और सेवा के आधार पर ही संस्थाएँ टिकेंगी

यहाँ पुष्पा बेन काम करती थीं। अभी वे नागपुर से २० मील दूर एक गाँव में श्री भंसालीजी के साथ हैं। वहाँ सेविका का काम कर रही हैं। उनके द्वारा इस संस्था का आरंभ किस तरह हुआ, ये सब बातें सुन चुका हूँ। यह संस्था प्रारंभ में बहुत छोटी थी, अब धीरे-धीरे इसका प्रवाह बढ़ रहा है, यह बहुत ही अच्छा है।

विचारों का विकास ही जीवन है

कोई काम जब विशाल बनने लगता है, तब यह देखना पड़ता है कि उस काम के अन्दर का मूलतत्त्व भी विशाल हो रहा है या नहीं? कई बार यह देखा जाता है कि काम की अन्तरात्मा संकुचित होती जाती है और ऊपरी आकार (शरीर) बढ़ जाता है। बहुत सी संस्थाएँ इस बात की साक्षी हैं। तुकाराम ने कहा है कि 'भगवन! आपका विशाल रूप सारी दुनिया में जितना है, उतना ही काफी है। अब मुझे तो छोटा-सा ही रूप दिखा दो तो मेरा काम चल जायगा'। इसलिए मैं तो इस बात की चिन्ता ही नहीं रखता कि अमुक संस्था अमुक आकार में कैसे बढ़े? मैं तो सिर्फ यही चाहता हूँ कि अन्दर का आत्मतत्त्व कायम रहे। जिस तरह शरीर में आत्मा होती है, उसी तरह संस्थाओं को भी एक शरीर और एक आत्मतत्त्व हुआ करता है। जिन विचारों को लेकर कोई संस्था खड़ी होती है, वही उसका आत्मतत्त्व है। वह दिन-प्रतिदिन विकसित होते रहना चाहिए। उसमें किसी तरह की न्यूनता न आनी चाहिए। यही ध्यान रखने की बात है। लेकिन जैसे-जैसे सुविधाएँ बढ़ती जाती हैं, वैसे-ही-वैसे धर्म संकुचित होता जाता है। इसलिए शरीर के लिए अत्यावश्यक अनुकूलता से अधिक सुविधाएँ न बढ़नी चाहिए।

गाँवों में जाने से पहले

हमारे सेवकों को गाँवों के समाज का जीवन ध्यान में रख कर अपना जीवन उसके अनुरूप बना लेना चाहिए। याने सेवकों के जीवन का उस ग्राम-जीवन से मेल होना चाहिए। इससे मैं यह नहीं कहना चाहता कि गाँववाले जितने नीचे स्तर पर हैं, हमें भी उतने ही नीचे उतर जाना चाहिए। क्योंकि हमें तो उन्हें भी ऊपर उठाना है। लेकिन जिस तरह बच्चे को ऊपर उठाने के लिए माँ को कुछ नीचे झुकना पड़ता है, उसी तरह उन्हें उठाने के लिए हमें कुछ तो नीचे झुकना ही पड़ेगा। जब बच्चा ऊपर आ जाता है तो फिर उसमें शक्ति आ जाती है। आज जो समाज है, वह लगभग निराशा में ही डूबा हुआ है। यदि हम इन लोगों के जीवन से एकरूप होकर उनके पास पहुँचेंगे तो उन्हें सान्त्वना मिलेगी। उन्हें लगेगा कि ये लोग हममें से ही एक हैं और हम जैसे बनकर ही हमारी सेवा करना चाहते हैं। भगवान कृष्ण को गोकुल भेजा गया तो कोई राज्यवैभव के साथ नहीं। वहाँ उनके नये माँ-बाप भी बन गये। स्वयं भी ग्वालबालों में हिल-मिल गये। इसीलिए भगवान कृष्ण के गीत बड़े प्रेम से आज भी गाये जाते हैं। उनके ऐसे आचरण के कारण ही हमें उनके मुँह से गीता जैसा ग्रन्थ मिला। गीता से हमें ऐसा तत्त्वज्ञान मिलता है कि जिससे कभी भी जीवन के टुकड़े नहीं हो पाते।

कार्यकर्ता गाँवों की सेवा के लिए पहले अपने में गाँवों के गुण प्राप्त करें और उसके बाद ही उनमें अन्य गुण दाखिल करने की कोशिश करें। आज शिक्षक गाँव में जाता है और अपने साथ दुर्गुण भी लेता जाता है तो वह दूसरों को क्या सुधार सकता है? हमारे गाँव हजारों वर्षों से बिना किसीकी मदद के टिके हुए हैं। उन्हें शहरों की तरह विद्वानों की या अन्य किसी प्रकार की मदद नहीं मिली और न सरकार से ही मदद मिली है। फिर भी अपने पैरों पर अब तक खड़े रहे। उनमें कई गुण भरे पड़े हैं। हमारे देश के अन्दर ऐसी कोई चीज है, जिससे यहाँकी संस्कृति अब तक बनी हुई है, जब कि दुनिया की कितनी ही संस्कृतियाँ आज नामशेष हो गयी हैं! इस तरह देखें तो गाँवों में अनेक गुण हैं, उन्हें हमें सीखना चाहिए। शरीर-श्रम के विषय में प्रेम, एक-दूसरे के लिए त्याग करने की वृत्ति, अत्यधिक नम्रता आदि बहुत से गुण किसानों में जितने अधिक हुआ करते हैं, उतने हममें नहीं रहते। अतः पहले उन्हें प्राप्त करना चाहिए। उन्हें प्राप्त करके ही हम गाँवों में जायँ। इस तरह पहले हमें ही शिक्षण लेना होगा। गाँववाले संगीत में कितने मग्न हो जाते हैं! उनमें जो भक्ति है, उसका रस चखा जाय। यह भक्ति-रस लेकर उनमें प्रवेश करें तो सहज ही प्रवेश पा जायँगे। आज जो विजातीय दृश्य दीख पड़ता है, वह नहीं रहना चाहिए। जो गुणों को ग्रहण कर दोषों के निराकरण का प्रयत्न करता है, वही सरलता से गाँवों में प्रवेश पा सकता है।

संन्यासी सेवा करें

यदि गाँव की संस्थाएँ अपने लिए खास सुविधाएँ प्राप्त करें और गाँव से अलग दीखने लगें तो यहाँ बैठे हुए इन संन्यासियों की तरह पूरे समाज से बिलकुल अलग खतरे के सिगनल जैसे ही दीखेंगी, यद्यपि ये सेवक के तौर पर दीक्षा लिये हुए हैं। वैसे लोग समझते हैं कि संन्यासी बनते ही उन्हें किसीकी सेवा करने की आवश्यकता नहीं रह जाती। दूसरों को ही उनकी सेवा करनी पड़ती है। लेकिन जब विवेकानन्द जैसे संन्यासी सेवक बनते हैं, तब ऐसी धारणा का कोई अर्थ नहीं रह जाता। भूदान-ग्रामदान-यात्रा के सिलसिले में ढाई वर्ष पूर्व मैं काशी गया तो एक दिन बिना कोई सूचना दिये रामकृष्ण-मिशन में पहुँच गया। सुबह का समय था। चारों ओर पूरी सफाई दीख रही थी और वहाँके मुख्य संन्यासी कुछ संन्यासियों को लेकर शाक बना रहे थे। बातचीत के सिलसिले में वे कहने लगे कि हम लोग तो ऐसे लोगों को अपने यहाँ लेते हैं, जिन्हें कोई भी नहीं ले सकता। यहाँ ऐसी अनेक स्त्रियाँ हैं, जिन्हें कहीं भी ठौर-ठिकाना नहीं है। सेवा करना हमारा मुख्य धर्म है। मुझे यह देख-सुनकर बड़ा ही सन्तोष हुआ। सचमुच संन्यासी को तो सेवा-धर्म-परायण होना ही चाहिए। संन्यासी काम करे, सेवा करे तो वह अधर्म होता है—ये सारी कल्पनाएँ विवेकानन्द ने एकदम बदल डाली।

यों देखा जाय तो शंकराचार्य की संन्यास की कल्पना अलग ही है। संन्यासी वसन्त ऋतु है। जिस तरह वसन्त ऋतु स्वयं अपने सौन्दर्य का उपभोग नहीं करती, बल्कि अपनी मदद से सभीको पुष्पित और पल्लवित करती है, उसी तरह संन्यासी भी

अपना नहीं, दूसरों का ही हित करता है। इसी कल्पना के अनुसार ३२ वर्ष की छोटी-सी जिन्दगी में वे गाँव-गाँव घूमे और लोगों को उपदेश दिया। इसके लिए उन्होंने कितने कष्ट उठाये। गौतम बुद्ध की बात भी इसी प्रकार की है। उन्होंने सभी शिष्यों को बुलाकर कहा कि बहुजन-हिताय बहुजन-सुखाय आप सब घूमते रहे। स्वयं गौतम बुद्ध भी ४० वर्षों तक घूमे और निरंतर लोक-सेवा करते रहे। जब देश में ऐसे परिव्राजक, ऐसे भक्त, ऐसे सेवक गाँव-गाँव घूमते थे, तभी ज्ञान, वैराग्य और भक्ति के साथ जमीन पर स्वर्ग उतरता था।

कुछ लोग यह मानते हैं कि जहाँ वैराग्य होता है, वहाँ ऐश्वर्य नहीं रहता और जहाँ ऐश्वर्य होता है; वहाँ वैराग्य नहीं रहता। लेकिन यह बिलकुल गलत धारणा है। वास्तव में ऐश्वर्य को पचाने की शक्ति वैराग्य में होती है। वैराग्य के आधार पर ही ऐश्वर्य मानव का कल्याण कर सकता है। अन्यथा यदि जीवन का स्तर ऊँचा रखने का ही शौक रखेंगे तो आध्यात्मिक मूल्य खो बैठेंगे। इसलिए विवेकानन्द और शंकराचार्य ने वैराग्य-गुण की जो कल्पना की थी, उसे ही कायम रखकर भगवा वेष धारण करना चाहिए। लोगों को उसके बारे में यही मालूम पड़ना चाहिए कि ये तो हमारे सेवक हैं। इनसे हम किसी भी समय सेवा ले सकते हैं। संन्यासियों से सेवा लेने में किसीको भी संकोच न होना चाहिए। उन्हें भी यही लगना चाहिए कि हम लोगों की सेवा करने के लिए ही हैं। दोनों को यह कभी मालूम न होना चाहिए कि हम दोनों एक-दूसरे से अलग हैं। इसी प्रकार सेवकों को लोक-जीवन से एकदम घुल-मिल जाना चाहिए। ● ● ●

प्रार्थना-प्रवचन

हरमाठा (राज०) ४-३-'५९

उड़ीसा के उदाहरण से ग्रामदान का सबक लें

अभी आप लोगों ने मोहन बाबू द्वारा सुनायी गयी उड़ीसा के ग्रामदानी गाँवों की कहानी सुनी। आपके यहाँ राजस्थान में छोटे-छोटे गाँव हैं। उड़ीसा में इससे भी छोटे गाँव हैं। उन सब गाँवों का ग्रामदान कैसे हुआ, ग्रामदानी गाँववालों ने तालाब खोदने का पराक्रम कैसे किया, आपसी झगड़े कैसे मिटाये और किस तरह घर-घर में सर्वोदय-पात्र रखने शुरू किये, यह सब आप लोगों ने सुना। अब जैसे उड़ीसा में काम हुआ है, वैसा ही काम आपके यहाँ भी होना चाहिए। अच्छी बात सुनकर उसे आचरण में लाना चाहिए।

रामायण का क्या लाभ !

आप रामायण सुनते हैं। राम-लक्ष्मण के भ्रातृस्नेह की सुन्दर-से-सुन्दर बातें भक्तिपूर्वक सुनते हैं। लेकिन फिर अपने गाँव में सभी लोग भाई-भाई बन कर रहें, तभी रामायण सुनना सार्थक हुआ, ऐसा कहा जायगा। भरत-मिलाप सुन लिया, सीताराम के प्रेम के सम्बन्ध में भी सुन लिया, किन्तु गाँव में झगड़े होते रहें, भाई-भाई के बीच अनबन बनी रही, पास-पड़ोसी के साथ दुश्मनी चलती रही तो रामायण सुनने से क्या लाभ हुआ ? राम-लक्ष्मण, भरत-शत्रुघ्न की तरह प्रेम से हिल मिलकर रहना चाहिए। प्रेमपूर्वक रहने से ही भगवान की कृपा होती है !

आप लोगों में से किसीने उड़ीसा देखा है ? जिसने देखा हो, वह हाथ उठाये। कोई हाथ नहीं उठा ! अच्छा, किसी-ने गंगाजी देखी हैं ? जिन्होंने देखी हो, वे हाथ उठायें। एक हाथ उठा। जिन्होंने गंगा-स्नान किया हो, वे हाथ उठायें। इस बार अधिक हाथ उठे। गंगा दूर-दूर, बहुत दूर कलकत्ते के निकट जाकर समुद्र में मिलती है। आपमें से अधिकांश लोगों ने कलकत्ते का नाम तो सुना ही होगा। कलकत्ता के निकट ही जगन्नाथपुरी है, जहाँ हिन्दुस्तान के विभिन्न भागों से अनेकों लोग तीर्थयात्रा के लिए जाते हैं। जगन्नाथपुरी यात्रा का धाम है और कलकत्ता व्यापार का धाम ! जहाँ जगन्नाथपुरी बसी हुई है, उसी प्रदेश को उड़ीसा कहते हैं। उड़ीसा के छोटे-छोटे गाँव में लोगों ने मिल-जुलकर रहना तय किया है। सारी जमीन सारे गाँव की कर दी है। अपने गाँवों में किसी आदमी को बे-जमीन नहीं रहने दिया। हर गाँववालों ने अपने गाँव की एक दूकान कर ली है। गाँव का झगड़ा अब बाहर नहीं जाता। गाँव का झगड़ा गाँव में ही मिटा लेते हैं। सरकार के पास जाकर वे लोग रोना पसन्द नहीं करते। सरकारी कर्मचारी उनके पास आते हैं तो वे बताते हैं कि क्या-क्या काम किया। वे कोई माँग नहीं करते। उनका मानना है कि दोनों हाथों से डटकर काम करें तो हम सब कुछ पा सकते हैं। आपने उड़ीसावालों के सम्बन्ध में यह सब सुना है, अब उसीके अनुरूप अपने यहाँ भी काम करेंगे तो अच्छा होगा।

ग्रामदान की परिभाषा

हर घर में सर्वोदय-पात्र रखना चाहिए। छोटे बच्चे के हाथ से प्रति दिन एक मुट्ठी अनाज उसमें डलवाना चाहिए। जो प्रति-दिन सर्वोदय-पात्र में अनाज डलवायेंगे, वे हाथ ऊपर उठायें ! सब हाथ ऊपर उठ गये, मतलब यह है कि हर घर में सर्वोदयपात्र में अनाज डाला जायगा।

हर घर में भगवान ने बच्चे दिये हैं। उन बच्चों का पालन-पोषण और रक्षण होना चाहिए। वह तभी हो सकता है, जब सब-को जमीन मिले। सभी लोग मिल-जुलकर प्रेमपूर्वक काम करें। मिल-जुलकर रहना और प्रेमपूर्वक काम करना, इसीका नाम है ग्रामदान ! क्या यह ग्रामदान का विचार आप सबको पसन्द है ? यदि हाँ तो अपने हाथ ऊपर उठायें। सब-के-सब हाथ ऊपर उठ गये। इसका अर्थ है कि यह विचार भी आप सबको पसन्द है। प्रेम की बात किसको पसन्द नहीं होती ? आप सबने इस विचार को पसन्द करके हाथ ऊपर उठाया है तो अब बोलिये—'जय ग्रामदान'।

सबने ग्रामदान की जय कहा। अब तय हुआ कि अपने यहाँ ग्रामदान होना चाहिए। जमीन सबकी होनी चाहिए। सबके बच्चों को खाना-पीना मिलना चाहिए।

सर्वोदय-पात्र में अनाज डालोगे, किसीको भूमिहीन नहीं रहने दोगे तो फिर क्या यह निश्चय नहीं करोगे कि हमारे गाँव में कभी झगड़े नहीं होंगे ? झगड़े हो ही जायँ तो आपस में बैठ कर निपटा लोगे ? सुना है कि इस गाँव में झगड़े होते हैं। गाँव में झगड़ा होने से गाँव में आग लग जाती है। इसलिए झगड़े बन्द करके प्रेमपूर्वक रहना चाहिए। अभी हम आपको इतना ही कहना चाहते है। ● ● ●

हरिजन भाइयों के साथ

साबरमती २१-१२-'५८

हम सब हरिजन का काम करने के लिए तैयार हो जायँ

हरिजन-कार्य के साथ मेरा बहुत ही पुराना सम्बन्ध रहा है। इस कार्य का श्रीगणेश इसी आश्रम में हुआ था। आरम्भ के दिनों में यहाँ भी भंगी रखे जाते थे। भंगी-काम करने के बदले उन्हें कुछ पारिश्रमिक दे दिया जाता था। जब मुख्य भंगी कभी बीमार हो जाता तो उसीका लड़का वह काम करता था। एक बार ऐसा ही हुआ। बेचारा भंगी का एक छोटा-सा बच्चा मल-मूत्र से भरी बालटी लेकर खेतों के गड्ढे में डालने के लिए जा रहा था। उससे वह बालटी ढोई नहीं जा रही थी। वह परेशान था। उसे देखकर मेरे छोटे भाई बालकोबा को दया आयी और वह उसी समय उस लड़के की मदद में पहुँच गया।

बालकोबा ने बाद में आकर वह घटना सुनाते हुए मुझे यह भी पूछा कि 'मैं भंगी-काम करना चाहता हूँ। क्या इसमें आपकी सम्मति है?' मैंने कहा—'बहुत अच्छा। तुम वह काम करो। मैं भी तुम्हारे साथ आऊँगा'। मैं उसके साथ गया। फिर सुरेन्द्रजी भी हमारे साथ आये। इस तरह इसी आश्रम से यह भंगी-काम शुरू हुआ है।

ब्राह्मण का काम वेद अध्ययन और अध्यापन करना था। उस काम को छोड़कर इस जमाने में ब्राह्मण रसोइये का काम करने लगे हैं। यह बात तो सभी कोई जानते थे। पर इस तरह ब्राह्मणों के द्वारा भंगी-काम करना एकदम नयी बात थी। बा को यह बात बिलकुल पसन्द नहीं आयी। उन्होंने बापू से शिकायत की कि 'विनोबा और बालकोबा का ब्राह्मण होकर यह काम करना कैसे सहन किया जा सकता है? यह तो एकदम खराब बात है।' बापू ने उन्हें समझाया कि 'ब्राह्मण होकर भंगी-काम करे, इससे बढ़कर दूसरी कौन-सी अच्छी बात हो सकती है?' इस तरह भंगी-कार्य को आरम्भ करने में बालकोबा की मुख्य तपस्या रही है। मैं और सुरेन्द्रजी उसके सहायक थे। तभी-से इस काम के साथ मेरा घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है।

'४५ के बाद जब मैं जेल से छूट कर आया, तब मैंने भंगी-काम करने का ही संकल्प कर लिया था। उन दिनों मैं पवनार में रहता था। वहाँसे ३ मील दूर सुरगाँव जाकर मैंने भंगी का काम करना शुरू किया। प्रति दिन डेढ़-दो घंटा मुझे सुरगाँव जाने-आने में लगता था और तीन घंटे करीब वहाँ काम करता था। बीच में मैं तीन रोज बीमारी के कारण वहाँ नहीं जा सका था, बाकी प्रतिदिन वहाँ जाता-आता रहा। सर्दी, गर्मी, वर्षा आदि किसी भी ऋतु में मेरा यह क्रम भंग नहीं हुआ। लोग मुझे पूछते थे कि 'आपका यह काम कब तक चलेगा'? 'बीस वर्षों तक' यही मेरा जवाब होता था। बीस वर्षों में नयी पीढ़ी तैयार हो जायगी और फिर वह काम करने लग जायगी।

आखिर बापू चले गये। फिर सभी ओर से मुझपर बाहर निकलने के लिए दबाव पड़ने लगा। मुझे भी लगा कि कहने-वालों की माँग जायज है। तभी मैं वहाँसे बाहर आया सो अभी तक लगातार घूम ही रहा हूँ।

भंगी के तीन काम

साधारणतः भंगी के तीन काम माने जाते हैं: (१) भंगी-काम (२) गाँव का काम और (३) बुनने का काम। संगीत का काम और दाई का काम भी भंगियों का ही था, लेकिन अब संगीत के काम को प्रतिष्ठा मिल जाने से उसे कई लोगों ने अपना लिया है तथा दाई के कामों में भी दूसरे लोग लग गये हैं। भंगी-काम के साथ-साथ बुनाई के काम को भी हम लोगों ने आश्रम में शुरू कर दिया। बुनाई के काम में भी बालकोबा बहुत प्रवीण था। बीस-पचीस व्यक्ति उसके अधीन बुनाई का कार्य करते थे। मैं भी बुनता था। हम लोगों ने कताई, बुनाई और धुनाई का काफी काम किया है। अस्पृश्यता-निवारण के लिए हेय माने जानेवाले कामों में ऊपरवाले लोगों का लगना जरूरी है, इसलिए वैसे कामों में लगना पड़ेगा।

सन् ३०-३२ की बात है। जेल से छूटने के बाद मैं नालवाड़ी नामक एक हरिजन गाँव में जा बैठा। वहाँ ९५ घर हरिजनों के तथा ५ घर दूसरों के थे। नालवाड़ी में मैंने हरिजन-सेवा शुरू की। वहाँ गाँव का उद्योग हाथ में लेने के लिए ढोर चीरने का काम सीखना जरूरी हो गया था। तब हमने उस काम का प्रशिक्षण पाने के निमित्त दो ब्राह्मणों को भेजा। उन्हें वह काम सीखते समय अनेकों कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। ढोर चीरने का काम करने के पश्चात् उन लोगों को इतनी गंदगी मालूम पड़ती कि खाना भी गले के नीचे नहीं उतरता था। इन सब कठिनाइयों के बावजूद वे उस काम में प्रवीण हुए। फिर दोनों ने मिलकर चर्मालय चलाया। इस तरह वह उद्योग भी उन्नत हुआ। मैं यह कह रहा था कि इस प्रकार हरिजनों के तीनों कामों में हम लोग दक्ष हैं और हम लोगों ने ये काम किये हैं।

हरिजनों के लिए ही भूदान का आरंभ

हैदराबाद के अन्तर्गत पोचमपल्ली गाँव की बात है। मैं वहाँ हरिजनवाड़ी देखने गया। वहाँके हरिजनों ने मुझसे माँग की कि 'हम लोगों के पास जीविका का कोई आधार नहीं है, इसलिए आप कुछ जमीन दिलवा सकें तो बड़ा अच्छा हो'। मैंने उन लोगों के लिए अपनी सभा में जमीन की माँग की तो सर्वप्रथम मुझे हरिजनों के लिए ही सौ एकड़ का दान मिला। यही भूदानयज्ञ के आरंभ की कहानी है। उसके बाद ही मैंने समस्त देश में घूम-घूम कर जमीन की समस्या हल करने का निश्चय किया है।

मुझे जो जमीन मिलेगी, उसका तृतीयांश हरिजनों के लिए होगा और दो तृतीयांश दूसरों के लिए होगा—यह मैंने पहले ही घोषणा कर रखी है। इसी घोषणा के अनुसार बिहार आदि में काम हो रहा है। इसके बावजूद भी हरिजन-सेवक-संघवालों ने मुझे हरिजन भाइयों को भूदान की जमीन देने के लिए पत्र लिखा है। उनके इस अज्ञान पर मुझे दया आती है। आप यह अच्छी तरह समझ लें कि भूदान के आरंभ में हरिजनों का बहुत बड़ा हित रहा है और उनके हितों की रक्षा में मैं आज भी लगा हुआ हूँ।

आपने यह तो सुना ही होगा कि बिहार में वैद्यनाथधाम के मन्दिर में हरिजनों का प्रवेश कराने के सिलसिले में हम पीटे गये। उसी स्थान पर पहले बापूजी और स्वामी दयानंद पर भी मार पड़ी थी। उससे बिहार के मुख्य मंत्री श्रीबाबू बहुत ही दुःखित हुए और उन्होंने हमारे चले जाने के बाद उसी मंदिर

में जबरदस्ती से हरिजनों का प्रवेश करवाया। कानून उनके अनुकूल था। दक्षिण भारत में भी पहले हरिजन-प्रवेश को लेकर काफी चर्चाएँ रहीं, अब धीरे-धीरे लगभग सभी मन्दिर हरिजनों के लिए खुल गये हैं। उत्तर भारत में कोई ऐसी बात नहीं है। जहाँ भी थोड़ी बहुत कठिनाइयाँ हैं, वहाँ मैं उन्हें दूर करने का प्रयास कर रहा हूँ।

'हरिजनों को भंगी के काम से मुक्ति कैसे मिले?' इसी विषय पर इन दिनों मेरा चिन्तन चल रहा है। दादा मावलंकर के चले जाने के बाद गांधी-निधि का काम बालासाहब खेर के हाथों में आया। वे उस सम्बन्ध में सुझाव लेने के लिए मेरे पास आये थे। वे सोच रहे थे कि मैं उनसे ग्रामदान का काम उठा लेने के लिए कहूँगा। लेकिन वैसा नहीं हुआ। मैंने उनसे कहा कि 'भंगीमुक्ति का काम होने से ही गांधी-निधि का काम सफल माना जायगा। अब यह काम केवल भंगियों का ही नहीं रहना चाहिए। यदि गांधी-निधि इस दिशा में इतना काम कर ले तो गांधीजी के स्मारक की आवश्यकता की पूर्ति हुई, ऐसा माना जायगा।' फिर उस काम के लिए योजना बनी, पत्रक छपे, लेकिन इसी बीच खेरसाहब भी हमारे बीच से उठ गये। अब वह योजना हरिजन-सेवक-संघ में फिर से बनी है। उस योजना को अप्पासाहब अमल में लाना चाहते हैं।

नयी पद्धति से हरिजन-सेवा हो

अस्पृश्यता-निवारण के लिए भी अब पुरानी पद्धति नहीं चल सकती। अब तो हमें सबका काम करना होगा। सब याने सर्वोदय का। हम इस काम को व्यापक रूप देंगे तो उसमें से सहज ही अन्त्योदय होनेवाला है। सर्वोदय की प्रक्रिया में पहले दुःखियों की सेवा का ही काम करते हैं तो उसके टुकड़े हो जाते हैं और उसमें दूसरों पर असर करने का सामर्थ्य नहीं रह जाता। इस समय हम हरिजनों के लिए छात्रवृत्ति, नोकरी की व्यवस्था या होटलों में प्रवेश कराने की ही माँग करते रहेंगे तो सार्वजनिक विचार करने की शक्ति खो देंगे। इसलिए उसकी जगह पर इस समय के अनुकूल भूमि-क्रांति का कार्य मैंने उठा रहा है। ग्राम-स्वराज्य में सभी लोग समान रहेंगे। गाँव की जमीन पर हरएक का समान अधिकार रहेगा। वहाँ जो ग्राम-सभा बनेगी, उसमें भी सभी जाति के लोग एक साथ मिलकर निर्णय करेंगे। तब तो सहज ही हरिजन-परिजन का भेद मिट जायगा। इसके विपरीत जब तक आप हरिजनों के लिए अधिकारों की माँग करते रहेंगे, तब तक हरिजनों का हरिजनपन कायम रहेगा।

मेरे कहने का आशय यह नहीं है कि हरिजन लोग पढ़ें नहीं, स्कूलों में न जायँ या उन्हें सुविधाएँ न मिलें। वे तो सभी सुविधाएँ उन्हें मिलनी ही चाहिए। लेकिन अब हमें अपने-आपको हरिजन-सेवक नहीं, शान्तिमय क्रान्ति के सेवक समझना चाहिए। आज दुनिया में एक ओर शान्तिवादी हैं तो दूसरी ओर क्रान्तिवादी। क्रान्तिवादियों में जाते हैं तो सिर फूटता है और शान्तिवादियों में जाते हैं तो अस्पृश्यता मिटाने के बदले हरिजनों को सुविधाएँ दिलवाने का प्रयत्न होता है। इसलिए अब जातिभेद का नाम लेना छोड़ कर हमें शान्तिमय क्रान्ति करनी होगी। फिर यदि हरिजन दुःखी हैं तो उन्हें एक दुःखी के तौर पर पहले मदद मिलनी चाहिए—इतना स्वीकार किया जा सकता है।

आज कुछ मदद आदिवासियों को दी जाती है तो हरिजनों को लगता है कि हमारे लिए कुछ नहीं हुआ और हरिजनों को मदद दी जाती है तो आदिवासियों को भी वैसा ही लगता है। एक-दूसरे को एक-दूसरे की चिन्ता ही नहीं है। इसीसे हमारे काम में तेजस्विता नहीं आ रही है। इसीलिए मैं चाहता हूँ कि जो सबसे पिछड़े हुए हैं, उनकी सेवा पहले हो। वह 'हरिजन' या 'आदिवासी' आदि किसी नाम से न होकर एक सर्वोदय के नाम से हो।

कोरापुट में बहुत-से ग्रामदान मिले हैं। वह प्रदेश आदिवासियों का है। वहाँ 'आदिवासी मंडल' नामक एक संस्थावाले लोग काम करते हैं। मैंने उन लोगों से कहा कि आप भले ही आदिवासियों की सेवा का काम करें, परन्तु अपने मंडल के नाम पर से संकीर्णता हटा दें। उसी समय वहाँके लोगों ने उसे 'नवजीवन मंडल' के रूप में परिवर्तित कर दिया। इसलिए मैं आपसे भी यही कहना चाहता हूँ कि यदि हम हरिजनों की स्वतन्त्र सेवा में लगे रहेंगे तो वह सेवा ही बहिष्कृत हो जायगी। अब हम हरिजन, आदिवासी आदि सभीकी सेवा करेंगे तो उसका असर समस्त लोगों पर पड़े बिना नहीं रहेगा। ● ● ●

प्रार्थना-प्रवचन

केकडी (राज) २२-२-'५९

पुराने युग के अपयश को सुयश में बदलना है

आज मुझको सवाल पूछा गया है कि जहाँ व्यास भगवान जैसे को लोगों को समझाने के काम में सफलता नहीं मिली और आखिर में उनको लिखना ही पड़ा कि 'ऊर्ध्वबाहुर्विरौम्येषः न च कश्चित् शृणोति माम्'। हाथ ऊँचा कर मैं चिल्ला रहा हूँ, फिर भी मेरी कोई सुनता नहीं। ऐसी स्थिति में आप सफलता की आशा कैसे रख सकते हैं?

ऐसा सवाल पूछा जाता है, उससे पता चलता है कि हमारे लोगों के दिमाग में दैववाद भरा हुआ है। 'धर्म की बात सुननेवाले सुनते जायँगे, लेकिन दुनिया बिगड़ती ही चली जायगी और धर्म का सारा प्रचार व्यर्थ ही है।' इस प्रकार धर्म के काम में दैववाद लाते हैं, परन्तु सांसारिक भोगवासना के काम में प्रयत्न करते हैं। यह कैसी विचित्र बात है? व्यास-महर्षि ने लिख रखा है कि "कलौ खलु भविष्यन्ति नारायणपरायणाः"। कलियुग में लोग नारायण-परायण होंगे। नर-समुदाय में रहनेवाला देव 'नारायण' कहलाता है। कलियुग में उसकी भक्ति चलेगी, मूर्ति की पूजा करनेवाली भक्ति नहीं चलेगी, ऐसा इसका तात्पर्य है। इसलिए अब दैववाद की कोई आवश्यकता नहीं है। कलियुग में भी असंख्य सत्पुरुष हो गये और पुराने लोगों में भी रावणादि राक्षस हो गये। इसलिए युग तो अपने मन का होता है। धर्म पर चलें या अधर्म पर, इसके लिए युग किसीको बाध्य नहीं करता है। आज अगर हम चाहें तो सतयुग में रह सकते हैं।

वेदव्यास की सफलता

वेदव्यास ने जो बातें बतायीं, वे उस जमाने के लोग नहीं समझ सके। क्योंकि वे बातें आगामी काल के लोग समझनेवाले थे। वेदव्यास की 'गीता' हिन्दुस्तान का सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ है, इसका प्रचार आज जितना हुआ है, उतना पुराने युग में

तो था ही नहीं, किन्तु मध्य-युग में भी नहीं था। इसलिए वेदव्यास और दूसरे सत्पुरुष निष्फल नहीं हुए, सफल हुए हैं। वे अगर नहीं हुए होते तो आज हम जानवर ही होते। हम जानवर नहीं हैं, बल्कि पहले के जमाने से आगे बढ़े हुए हैं। पुराने नीति-विचार और आज के नीति-विचार में कितना फर्क पड़ गया है। आज का युग बहुत आगे गया है, इसका श्रेय भगवान व्यास तथा उन साधु-सन्तों को है, जिन्होंने लोगों को समझाया है।

मैं निष्फल बनूँगा, ऐसा अगर आप लोग कहते हैं तो इसका क्या अर्थ होता है? यही न कि आप लोगों ने मेरी बात न मानने का निश्चय किया है? अगर ऐसा है तो मैं जरूर ही निष्फल बनूँगा, क्योंकि आप ही के संकल्प से और आप ही की शक्ति से यह काम बननेवाला है। इस भूदान-आन्दोलन में जो ४० लाख एकड़ भूदान मिला है, वह किसने दिया? आप ही ने दिया है। अर्थात् आप सर्व-समर्थ हैं।

आज का जमाना विज्ञान का जमाना है। दुनिया छोटी बन गयी है, देशों की सीमाएँ टूट रही हैं। आज ही हमने अखबार में पढ़ा कि सारी दुनिया की मुसाफिरी हवाई जहाज से करने में २४ घण्टे लगते हैं, जब कि कोलम्बस को अमेरिका पहुँचने में कई महीने लगे थे। इसलिए पुराना जमाना बदल गया है। आज के इस नये जमाने का छोटा-सा बालक भी अकबर बादशाह से ज्यादा ज्ञान रखता है। ऐसे प्रगतिशील जमाने की तुलना पुराने जमाने से करना उचित नहीं है।

अन्तिम चोट आपकी

बात पुरानी है। उस समय मैं लगभग पाँच वर्षों का छोटा बच्चा था। घूमते-घूमते एक पत्थर फोड़नेवाले मजदूर के निकट जा पहुँचा। वह पत्थर फोड़ रहा था। कुछ समय देखते रहने के बाद मेरा मन भी पत्थर फोड़ने का हुआ। मैंने उससे उसकी हथोड़ी माँगी। इसपर उस भाई ने लगभग अपना काम पूरा करके अपनी हथोड़ी मेरे हाथों में दे दी। मैंने हथोड़ी ली और पत्थर पर प्रहार किया। एक ही दो प्रहार से वह पत्थर टूट गया। उस समय हमें कितनी प्रसन्नता हुई होगी, उसकी आप कल्पना कर सकते हैं? जो पत्थर वह नहीं तोड़ सका था, वह हमने तोड़ दिया। क्योंकि उसपर अनेकों प्रहार पहले से ही हो चुके थे। वैसे ही सन्त पुरुषों द्वारा समाज की दूषित अवस्था को मिटाने के लिए अनेकों प्रहार हो चुके हैं। जर्जरीभूत व्यवस्था मिटने की तैयारी में है, तभी यह हथोड़ा बाबा के हाथ में आया है। अब अगर आप बाबा को यश दिलाना चाहते हो तो यह हथोड़ा अपने हाथों में लो और प्रहार करो। यह पत्थर टूट जायगा। समाज-व्यवस्था परिवर्तित हो जायगी।

भगवान व्यास का जमाना असफल रहा तो हम भी असफल रहेंगे, ऐसी अभद्र मन में शंकाएँ मत लाओ। पुराने जमाने के अपयश के आधार पर नये जमाने को सुयश मिलता है। इसलिए श्रद्धा रखकर हिम्मतपूर्वक आगे बढ़ो। ० ० ०

स्वागत-प्रवच

लोसल (राज०) ११-३-'५९

अन्य प्रदेशों में रहनेवाले राजस्थानी भाइयों को सन्देश

आज रास्ते में एक भाई ने पूछा कि मारवाड़ी लोग राजस्थान छोड़कर अन्यत्र जाते हैं, इसका क्या कारण है? हमने उसे बताया कि इस प्रान्त में खाने का कम है। इसलिए यहाँके लोग दूर-दूर जाते हैं। यहाँ भी अगर गंगा जैसी नदियाँ बहती होतीं तो वे लोग बाहर न जाते। जिन प्रान्तों में दारिद्र्य है, पैदावार कम है, लोगों के जीवन एक-दूसरे के साथ जुड़े हुए नहीं हैं, अक्सर उन्हीं प्रान्तों के लोग बाहर जाते हैं।

दोहरी जिम्मेवारी

अपने प्रान्त को छोड़कर दूसरे प्रान्त में जानेवालों की दोहरी जिम्मेवारी है। एक तो यह कि वे जिन प्रान्तों में आजीविका चलाते हैं, उस प्रान्त के लोगों की सेवा करना अपना कर्तव्य मानें और दूसरे में वे जहाँसे आये हैं, वहाँवालों की भी सेवा करना अपना उत्तरदायित्व मानें। वे दोनों ओर की जनता की सेवा करेंगे तो उन्हें सभी ओर से प्रेम प्राप्त होगा।

जमनालालजी राजस्थान के रहनेवाले थे और उन्होंने सेवा की—वर्धा की। हिन्दुस्तान के अच्छे-अच्छे लोग वहाँ आये। इसलिए उन्होंने उन सबकी तो सेवा की ही, राजस्थान की भी सेवा की। वही जिम्मेवारी यहाँके लोगों पर भी आती है। बाहर जानेवालों को सोचना चाहिए कि हम जिस प्रान्त में गये हैं, वहाँके लोगों की हम क्या सेवा करें और जहाँसे हम आये हैं, वहाँके लोगों की भी क्या सेवा करें? हम जहाँ पैदा हुए, वहाँ एकमात्र पैसा भेज देना ही सेवा नहीं है। पराक्रमी लोगों के बाहर चले जाने से पीछे अपराक्रमी तथा अबुद्धिमान लोग रह जाते हैं। उन्हें पैसा मिलने से वे जड़ और आलसी बनेंगे। पैसा भेजते रहने से सामनेवालों के पराक्रम का शोषण होता है। शोषण भी अनेक प्रकार का होता है। पैसा चूसे तो पैसे का शोषण और पराक्रमी लोग बाहर गये तो पराक्रम का शोषण हुआ। इसलिए पैसा भेजना ही सेवा नहीं है। मैं पैसे भेजने को एकदम गलत भी नहीं मानता हूँ, लेकिन मुख्यतः भेजे जानेवाले पैसे का सदुपयोग कैसे किया जाय, यही एक सवाल है!

गाँव-गाँव में कुएँ हों

अभी हम मेवाड़, अजमेर और नागौर होकर इधर आये हैं। मेवाड़ और अजमेर की हालत तो फिर भी ठीक है, लेकिन नागौर जिले की हालत दयनीय है। जब तक गाँव एक न हो जायँगे, तब तक गाँवों की ताकत नहीं बनेगी। यहाँ केवल पैसों से ही काम चलनेवाला नहीं है। सभी एक हो जायँ, फिर पराक्रम बढ़े और तब पैसा आये एवं वह सबके उपयोग में आये, तभी गाँवों की तरक्की होगी। यहाँ धर्मशालाएँ बनायी गयी हैं, यह तो अच्छा है, मगर उनके बदले में कुएँ बनवा दिये जायँ तो अधिक अच्छा होगा। कुएँ बन जाने से यहाँ फसल खूब होगी, जमीन अच्छी बन जायगी। राजस्थान में नहरें आती हैं तो उनका स्वागत है, लेकिन गाँव-गाँव में कुएँ बनाने से बहुत बड़ा पराक्रम होगा, परम पुरुषार्थ का काम होगा।

एक-एक गाँव ग्रामदानी गाँव बने, गाँव के लोग गाँव के

विकास का काम करें और कुएँ बनायें तो यह प्रान्त जाग उठेगा। यहाँ पूरे प्रान्त का पराक्रम कैसे बढ़े—यह चिन्तन होना चाहिए। जमीन को उपजाऊ बनाइये। स्थान-स्थान पर जो अनुपजाऊ भूमि पड़ी है, उसे उत्पादन के योग्य बनाना ही सबसे बड़ी सेवा है। जब तक सारी भूमि उपजाऊ नहीं बन जाती, तब तक पूरी सेवा नहीं होगी। ग्रामदान से सब एक हो जायँ और बाहरवालों के सहयोग से कुएँ तैयार करें।

घर-घर में सर्वोदय-पात्र होने चाहिए। गो-ग्रास के लिए या गरीबों को खिलाने के लिए ही नहीं, अपितु देश की शान्ति के लिए भी आपको कुछ-न-कुछ देना चाहिए। सर्वोदय-पात्र शान्ति के काम के लिए जनता की ओर से दिया जानेवाला सम्मतिदान है। उससे सतत सेवा करनेवाले कार्यकर्ताओं की सेना तैयार हो सकती है। वह सेना बाहरवालों से कुएँ बनाने में मदद लेने का काम भी कर सकती है।

• • •

प्रार्थना-प्रवचन

मकराना (राज०) ७-३-'५९

'रैन बसेरा कर ले डेरा, उठ चलना परभात रे'

अभी हम लोगों ने मौन प्रार्थना की। मौन से बढ़कर कोई प्रार्थना नहीं है। मौन में मनुष्य अपने-अपने इष्टदेव का नाम ले सकते हैं। प्रार्थना में हिन्दू आते हैं, मुसलमान आते हैं और दूसरे धर्मोंवाले भी आते हैं। मौन प्रार्थना करने से वे लोग 'अल्ला', 'ईश्वर' आदि का ध्यान भी कर सकते हैं। विभिन्न धर्मोंवाले एक-दूसरे के साथ बैठते हैं, प्रेम से प्रार्थना करते हैं, यह बहुत अच्छी बात है।

हमारा सारा काम प्रेम का है। इस काम को देखने के लिए देश-विदेश के लोग आते हैं। क्या देखना चाहते हैं? इस संबंध में आज एक भाई से बात हो रही थी। उस भाई ने हमसे पूछा कि ग्रामदान का विचार तो समझ में आता है, किंतु गाँववाले लोग अपनी समस्त जमीन का दान कैसे करते हैं? यही एक आश्चर्य की बात है। मैंने उससे कहा कि गाँव में जमीन देनेवाले भी हैं और लेनेवाले भी! जो देते हैं, वे भर-भर पाते हैं। इसलिए लोग सहर्ष ग्रामदान में सम्मिलित होते हैं। फिर गाँव की जमीन सभीकी हो जाती है। फिर सरकार का दखल कम-से-कम होता है। जैसे-जैसे सरकार की ओर से दखल कम होगा, मदद मिलेगी, वैसे-वैसे ग्रामदान अधिक होंगे।

सारे भारत में लगभग पाँच हजार ग्रामदान हुए हैं। करीब पचास लाख एकड़ जमीन दान में प्राप्त हुई है। इतने कम समय में इतना बड़ा काम कैसे हो गया, लोग इतना दान क्यों देते हैं? इसलिए कि यही भारतीय संस्कृति है। हमारे यहाँ-की सभ्यता में पला-पोसा आदमी पड़ोसी का दुःख नहीं देख सकता। दुःखियों को सुखी बनाना यहाँका धर्म है। चाहे जैन हो, बौद्ध हो, सिख हो, ईसाई हो, मुसलमान या हिंदू ही हो, सभी इस धर्म को मानते हैं। आस-पास के लोगों को दुःखी देखकर जब तक उनके दुःखों को दूर नहीं किया जाता, तब तक हिंदुस्तान के आदमी के लिए खाना हराम हो जाता है। इसीलिए लोग सहर्ष भूदान, ग्रामदान करते हैं।

ग्रामदानी गाँवों में थोड़ी-थोड़ी जमीन सबको मिलती है। फिर सभी लोग मिलकर पैदवार बढ़ा सकते हैं। ग्रामोद्योग खड़े कर सकते हैं। ग्रामदान के बाद लोग यह संकल्प कर सकते हैं कि हम हमारे गाँव में जो कपड़े तैयार करेंगे, उन्हींका उपयोग करेंगे। खेतों में जो गन्ने होते हैं, उन्हीसे बनाया हुआ गुड़ खायेंगे। इस प्रकार अपना तेल, अपना गुड़ और अपना कपड़ा बना लेने से गाँव का उद्योग बढ़ेगा। आपसी प्रेम बढ़ेगा। संकल्प-शक्ति बढ़ेगी। सबकी संकल्प-शक्ति बढ़े, हिल-मिल कर रहें, अपने उद्योग बढ़ाएँ, इसीका नाम है ग्रामदान।

स्वराज्य गाँवों में पहुँचे

हमारे देश पर पहले अंग्रेजों की हुकूमत थी। उनकी इच्छा से ही यहाँ निर्माण का काम हो सकता था। हम लोग अपनी इच्छानुसार निर्माण का काम नहीं कर सकते थे, लेकिन अब अंग्रेजों की हुकूमत नहीं रही। हम लोग आजाद हो गये हैं। हमारे राष्ट्र को स्वराज्य मिला, लेकिन अभी वह स्वराज्य गाँवों तक पहुँचा नहीं है। गाँवों के लोगों को स्वराज्य की अनुभूति नहीं हो रही है। दिल्ली में सूर्योदय होने से क्या हुआ? जब आपके गाँव में, आपके घर में, आँगन में सूरज की रोशनी पहुँचेगी, तभी आप कहेंगे कि सूर्योदय हुआ। इसी तरह स्वराज्य दिल्ली में आया है, वह अपर्याप्त है। गाँव-गाँव और घर-घर में स्वराज्य आना चाहिए। ग्रामदान से ग्रामस्वराज्य आता है। ग्रामस्वराज्य ग्रामदान का अधिष्ठान है।

ग्रामदान ऐसी शानदार चीज है कि जिससे लोग एक सूत्र में बँध जाते हैं। सहजीवन से सारे दुःख मिटते हैं। सहजीवन में, समुदाय में भगवान प्रगट होते हैं। गीता में भगवान ने कहा है कि जब सब मिलकर भक्ति करते हैं, तभी वे प्रकट होते हैं। अकेले-अकेले भक्ति करने से भगवान प्रकट नहीं होते। ग्रामदान में सब मिलकर जोतेंगे, बोयेंगे और खायेंगे। इसीलिए क्या नहीं होगा?

आज यहाँके एक प्रमुख भाई हमारे साथ चले। फिर उन्होंने सहयात्रा के संबंध में प्रसन्नता व्यक्त की। इसपर मैंने उनसे कहा कि हमारे शास्त्रों में सात कदम साथ चलनेवालों को दोस्त कहा है। इसलिए आज से आप हमारे दोस्त हो गये। दोस्त को दोस्त के कामों में हाथ बँटाना होता है। इसलिए अब आप मेरा बोझ कम करें और मेरा यह काम उठा लें। आज यहाँ एक मुहल्ले में सर्वोदय-पात्र रखे गये, ये सर्वोदय-पात्र केवल मुहल्ले में ही नहीं, सारे गाँव में रखे जाने चाहिए। हमने अभी दो कार्य-क्रम बताये हैं, पहला तो गाँव-गाँव ग्रामदान हो और दूसरा घर-घर में सर्वोदय-पात्र हो।

सातत्य का महत्त्व

इस सभा में हिन्दू, मुसलमान आदि सभी लोग उपस्थित हैं। क्या आप लोग सभी अपने घरों में सर्वोदय-पात्र रखेंगे? [सब लोगों ने अपना हाथ ऊपर करके स्वीकृति दी।] सर्वोदय-पात्र में अनाज डालना कब तक चालू रहेगा? जब तक श्वासोच्छ्वास चलता है, तब तक। कोई आपसे पूछे कि कब तक नहायेंगे? शरीर मैला होता है, तब तक हम नहाते रहेंगे। शरीर कहता है कि मैं रोज गंदा बनूँगा तो हम कहेंगे कि हम भी हर रोज नहा लेंगे। चलेगी शरीर की और अपनी कुश्ती! प्रतिदिन स्नान कर लेने से स्वच्छ रहते हैं। हर रोज भक्ति करते हैं, खाना खाते हैं, निद्रा लेते हैं, ऐसे ही मुट्ठी भर अनाज रोज देते जाना चाहिए।

बहनों ने सर्वोदय-पात्र में प्रतिदिन एक मुट्ठी अनाज डालना

स्वीकार किया है, मगर सवाल यह है कि उस अनाज को ले कौन जायगा ? क्या गाँव-गाँव में सर्वोदय-मित्र नहीं बनेंगे ? नागौर जिले में यदि कोई एक कार्यकर्ता होगा तो अकेला क्या-क्या करेगा ? इस गाँव में सर्वोदय-मित्र खड़े होने चाहिए। यहाँ जो सर्वोदय-मंडल है, उसके माध्यम से सर्वोदय-पात्रों की व्यवस्था होगी तो बहुत काम बनेगा।

कुरान में एक बहुत सुन्दर वाक्य है। उसका अर्थ है : 'सब कुछ मेरे पर है और सबको बोध देना भी मेरे पर है।' हमारे आदि में भगवान हैं और अन्त में भी भगवान हैं। बीच में है—हमारा घमंड। यह घमंड मिट जाय तो यहाँ, वहाँ और सब जहाँ भगवान-ही भगवान है। सिर्फ भगवान को पहचानने की आवश्यकता है।

भगवान का रूप

लोग भगवान के दर्शनों के लिए मन्दिरों में जाते हैं और दूर-दूर तीर्थाटन करने के लिए जाते हैं। क्या मन्दिरों और तीर्थों में ही भगवान हैं। गाँवों में भगवान नहीं हैं ? घरों में भगवान नहीं हैं ? दूर देखते-देखते हम नजदीक देखना भूल गये हैं। इसीलिए हमारे निकट रहनेवाला परमेश्वर दिखायी नहीं पड़ता। हमारा घमंड, हमारे मन में रहा हुआ भेद-भाव, काम, क्रोध तथा कृत्रिम जीवन ही हमें नजदीक देखने नहीं देता। यह स्थिति अत्यन्त खतरनाक है। हमें घमण्ड छोड़ना होगा। भेद-भाव मिटाना होगा। काम, क्रोध से ऊपर उठना होगा। कृत्रिम जीवन से व्यामोह हटाना होगा। जब हम अपने रूप में होंगे, स्वस्थ रूप में होंगे, तब हमें तत्काल मालूम हो जायगा कि यह सारा समाज भगवान की ही मूर्ति है। इसीकी सेवा करने के लिए चोला (शरीर) है। दो दिन के बाद तो यह मिटनेवाला है, मिट्टी में मिलनेवाले हैं, इसलिए सबकी खिदमत करके मिटे—यही कोशिश करनी चाहिए।

सेवा का काम सबसे कठिन माना गया है। लोगों को आज अनेकों प्रकार के दुःख हैं। शारीरिक दुःख हैं और मानसिक दुःख भी। उन दुःखों से मुक्त करने के लिए सेवकों को जितनी कोशिश उन्हें शारीरिक शान्ति पहुँचाने की करनी पड़ेगी, उतनी ही कोशिश मानसिक शान्ति पहुँचाने के लिए भी करनी पड़ेगी। एतदर्थ सेवकों के जीवन में एक विशिष्ट प्रकार की साधना अभिव्यक्त होनी चाहिए। सेवा का काम वही कर सकता है, जो नम्र होता है और अपने को भूल जाता है। हमें जो शरीर मिला है, वह सबकी सेवा के लिए ही है। इस सत्य का दर्शन बहुत ही साधना के बाद होता है। इसलिए सेवा-धर्म को स्वीकार करने से पूर्व सेवा के प्रति अपनी भावनाओं को स्पष्ट करना चाहिए। हमारा सेव्य समाज है। हम समाज को भगवान का ही रूप समझें।

मरें तो कैसे मरें ?

मनुष्य जब धरती पर आया, तब वह रोता था और समाज हँसता था। मरते समय उसे हँसना चाहिए और लोगों को रोते छोड़ जाना चाहिए। लोग कहते ही रह जायँ कि 'कैसा भला आदमी चला गया। सबकी प्रेमपूर्वक सेवा करनेवाला था वह'। आखिर जब यहाँसे कूच करना ही है तो क्यों किसीसे वैर-विरोध करना ? 'रैन बसेरा कर ले डेरा, उठ चलना परभात रे'। एक दिन रहना है और दूसरे दिन बहुत सबेरे निकल पड़ना है। किसीकी रात ५० साल की होती है, किसी की ६० साल की होती है तो किसी की १०० साल की। सौ साल की रातवाला लाखों में एक होता है हमारी इस सभा में कोई सौ सालवाला भाई हो तो खड़ा हो जाय। कोई नहीं खड़ा हुआ। नब्बे सालवाला भी नहीं ! अस्सी सालवाला भी नही ! सत्तर सालवाला है ? (दो भाई खड़े हुए)

जिन्दगी सौ साल की होती है। पर यहाँ केवल सत्तर सालवाले भाई हैं और मै हूँ एक ६० से ज्यादा, ६४ सालवाला। सभा में कोई ६४ सालवाला भी नहीं है। याने सबके सब जवान हैं। इन सभी जवानों को ५०, ६०, ७०, साल का यह एक रैन बसेरा है। 'रैन बसेरा कर ले डेरा, उठ चलना परभात रे'।

हमारी जिन्दगी कैसी है ? आज आये और कल बहुत सबेरे उठकर यहाँसे चल देंगे। बिलकुल एक दिन का बसेरा। फिर दूसरे गाँव में, फिर तीसरे गाँव में और फिर चौथे गाँव में। ऐसे बाबा लगातार आठ साल से चल रहा है और यह तब तक चलता रहेगा, जब तक कि गाँव-गाँव में ग्रामस्वराज्य की स्थापना नहीं हो जायगी। एकबार सूर्य भगवान की साक्षी में बाबा ने यह प्रतिज्ञा की है कि जब तक हमारे पाँवों में ताकत है, तब तक हम ग्रामस्वराज्य की स्थापना के लिए घूमते रहेंगे।

'अब तो बात फैल गयी, जानत सब कोई।
मीरा प्रभु लगन लागी, होनी हो सो होई।'

एक बार लगन लग जाय तो जिन्दगी में आनन्द आ जाता है। खाना, पीना तो कुत्ता भी करता है, पर मनुष्य उससे कुछ विशिष्ट है। इसलिए अब मीरा जैसी लगनवाले शान्ति-सैनिक तैयार होने चाहिए।

यहाँ दस शान्ति-सैनिक मिले हैं, यह बहुत अच्छी बात है। ऐसे लोग सेवा के क्षेत्र में आते हैं तो घर-घर में सर्वोदय-पात्र रखने चाहिए और गाँव-गाँव ग्रामदान होने चाहिए। ● ● ●

अनुक्रम

१. शान्ति-सैनिकों को बीमार पड़ने का हक नहीं है
गगवान २ मार्च '५९ ,, २५३
२. शुद्ध विचार और सेवा के आधार पर ही संस्थाएँ टिकेंगी
कोबा २२ दिसम्बर '५८ ,, २५४
३. उड़ीसा के उदाहरण से ग्रामदान का सबक लें
हरमाठा ४ मार्च '५९ ,, २५५
४. हम सब हरिजन का काम करने के लिए तैयार हो जायँ
साबरमती २२ दिसम्बर '५९ ,, २५६
५. पुराने युग के अपयश को सुयश में बदलना है
केकड़ी २२ फरवरी '५८ ,, २५७
६. अन्य प्रदेशों में रहनेवाले राजस्थानी भाइयों को सन्देश
लोसल ११ मार्च ,, ,, २५७
७. 'रैन बसेरा कर ले डेरा, उठ चलना परभात रे'
मकराना ७ मार्च ,, ,, २५९

श्रीकृष्णदत्त भट्ट, अ० भा० सर्व-सेवा-संघ-प्रकाशन, राजघाट, काशी द्वारा भार्गव भूषण प्रेस, वाराणसी में सम्पादित, मुद्रित और प्रकाशित

फोन : १२८५ तार—प्रकाशन, राजघाट, काशी।